ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-1* Issue-3* April- 2016
Innovation The Research Concept

संगीत एंव आध्यात्म

सारांश

आध्यात्म और संगीत एक दूसरे के पूरक हैं। संगीत से मोक्ष की प्राप्ति होती है। दूसरे शब्दों में संगीत एक सहज आनंद की अनुभूति है। एक खो जाने की प्रक्रिया तन्मय हो जाने की अनन्य स्वर लहरी है।

मुख्य शब्द : भजन, आत्मलाभ, आध्यात्म।

राजेन्द्र माहेश्वरी
व्याख्याता,
संगीत विभाग,
जानकी देवी बजाज राजकीय कन्या महाविद्यालय,
कोटा, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना

संगीत जीवन के ताने–बाने का वह धागा है जिसके बिना जीवन सत् और चित्त का अंश होकर भी आनन्दरहित रहता है तथा नीरस प्रतीत होता है। यह न तो सामान्य शिक्षण अथवा व्यसन–पूर्ति की वस्तु है, और न ही कठिन परिश्रम के परिहारार्थ साधारण–सा मनोरंजन मात्र। संगीत ईश्वरीय वाणी है, अतः वह ब्रह्मरूप ही है। शास्त्रों से ज्ञात होता है कि ब्रह्म इन दो रूपों में कल्पित होता है। शब्द ब्रह्म को भली–भांती जान लेने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

शब्द ब्रह्माणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।

वस्तुतः समपूर्ण ब्रह्माण ही नादमय है। नाद से वर्ण, वर्ण से शब्द से वाक्य और वाक्यों से भाषा उद्भूत होती हैं भाषा से सृष्टि का व्यवहार चलता है, अतएव सम्पूर्ण सृष्टि ही नाद के अधीन है। भारतीय मनीषियों ने संगीत को हृदयगत भावों के उद्घाटन का सफल साधन मानते हुए इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय माना हैं यहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिए संगीत को उपयुक्त बताया हैं भारतीय दार्शनिकों के मतानुसार कला वह है जो मुक्ति की उपकार है। जोकल केवल भौतिक सुख–विलास का माध्यम हो वह भारतीय दार्शनिकों की दृष्टि में कला नहीं।

मानव जीवन का लक्ष्य 'आत्मलाभ– है–'' आत्मलाभान्न परं विद्यते।'' मानव जीवन का स्वारस्य इसी आत्मोपलब्धि में निहित माना गया है। उपनिषदकारों के अनुसार आत्मा का निर्माण पंचकोशों से बताया गया है– अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विश्राम मय कोश तथा आनन्दमय कोश। प्रथम् दो कोश तो जीव जन्तुओं में समान रूप से उपलब्ध होते हैं, शेष तीन मानव जाति की सहज विभूति हैं। आनन्दमय कोश का महत्व सर्वाधिक माना गया है। परम तत्व का साक्षात्कार इसी कोश का कार्य है।

आध्यात्मिकता समग्र भारतीय जीवन दर्श की मूलभित्ति रही हें परमतत्व के अनुसंधान की चेष्टा हमारे सभी प्रयासें को चिर–काल से निरन्तर अनुप्राणित करती रही है। अध्यात्म के रंग में रंग कर हमारे मनीषी कलाकारों ने विश्व के प्रत्येक रूप में सर्वव्यापी दिव्य सत्ता का साक्षात्कार किया है। भारतीयों की धर्मभावना केवल नित्य'नैतित्तिक तथा ब्राह्म आचारों तक कदापित सीमित नहीं रही, अपितु आध्यात्मिक अनुभूति से अनुप्रेरित रही, यह तथ्य मननीय है, प्राचीन काल की यज्ञ परम्परा के पीछे यही निगूढ़ तत्व निहित है। यज्ञों के अंतर्गत सामगान का उद्देश्य जनानुरंजन न होते हुए विश्व को संचालित करने वाली अव्यक्त शक्ति का अराध नही रहा। प्राचीन जन–संगीत की धुनों का आध्यात्मिक साधना के लिए प्रयोग वैदिक संगीत का वैशिष्ट्य माना जा सकता है। ऋग्वेद की ऋचाओं का गान देवता की प्रसन्नता के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य माना जाता रहा। सामगान की संगीत–परम्परा परम तत्व के अनुसंधान से सार्थक रही है–''गायन्ति यं सामगाः।'' इस उद्देश्य का लोप होने पर सामगान कुत्सा

का विषय हो जाता था। सामवेद का गायन केवल गान–कौशल तक सीमित न थ अपितु उदात्त भावनाओं को आन्दोलित करने वाला था।

माना जाता है कि, वैदिक युग में सातों स्वरों का विकास हो चुका था–यथा आर्चिक (एक रचर), गाथिक (दो स्वर), सामिक (तीन स्वर), स्वरात्र (चार स्वर)। इस युग में संगीत का पूर्ण विकास था, उद्गान, उद्गीति स्त्रोत जैसे शब्दों का व्यवहार होता था। वेदों में सामवेद को ही संगीत का मूल स्त्रोत माना जाता है। आरम्भ में तीन स्वरों का प्रचलन था, ये थे उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इन्हें स्थान स्वर कहा गया है। इस प्रकार तीन स्वरों से लौकिक सात स्वरों की सृष्टि हुई है। यथा उदात्त से गांधार एंव निषाद, अनुदात्त से ऋषभ एंव धवैत तथा स्वरित से षड़ज, मध्यम व पंचम। फिर भी सामगान में प्रयुक्त स्वरों के नाम थेः कुष्ट (मन्द्र पंचम), मन्द्र (मन्द्र धौवत), अतिस्वार्य (मंद्र निषाद) चतुर्थ (षड़ज), तृतीय (ऋषभ) द्वितीय (गंधार) एंव प्रथम (मध्यम)। यह गान अवरोहत्मक था। सामगान की तीन शाखायें थीं– कौथुम, राणायनीय और जैमिनीयः जिनमें कौथुमी शाखाके अनुयायी सात स्वरों का व्यवहार करते थे। शिक्षा और प्रातिशाख्य में साम को वाक और प्राण की सममेत् मूर्ति कहा गया है। वाक शक्ति या प्रकृति और प्राण शिव या पुरूष रूप में कल्पित है। इस शिव शक्ति के मिलन को ही दर्शनशास्त्रियों ने संगीत'सृष्टि का कारण बताया है। प्राण वायु और इच्छा–शक्ति के मिलन से सूक्ष्म स्वर नाद की सृष्टि हैं समस्त सृष्टि का मूल नाद में ही निहित हैं तथा परमश्रेष्ठ परम ब्रह्म का स्वरूप नादमय हैं नाद की विविध विधियों कारहस्य परमानंद में विलीन होने में है। आहत नाद से लेकर अनाहत नाद की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया योगमार्ग के नादानुसंधान तथा लय–योग की विशिष्ट साधना है। योगशास्त्र के अनुसार नाद की उपासना ईश्वर–प्रणिधान के लिए श्रेष्ठ साधन माना गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

धर्म और संगीत एक दूसरे के साथ जुड़े हुये हैं। मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। इसी के अन्तर्गत संगीत की क्या भूमिका होती है उसे स्पष्ट करने का इस लेख में मेरा उद्देश्य है। नाद साधना परमब्रह्म की प्राप्ति में किस प्रकार सहायक हो सकती है, यही इस लेख का उद्देश्य है।

निष्कर्ष

वस्तुतः अध्यात्म की प्रकरण में नाद के चिरस्थायितव का रहस्य निहित है। जहां संगीत कला कुछ ही व्यक्तियों के विलास तथा सुख–साधन तक सीमित हो जाती हैं वहीं चिरन्तनता के स्रोत स्वंय सूखा जाते हैं। स्थूल के माध्यम से सूक्ष्मतम का साक्षात्कार भारतीय दर्शन की विशेषता है, और इस वैशिष्ट्य के कारण संगीत कला का समादर महर्षियों, दार्शनिकों एंव भक्तजनों के द्वारा बराबर किया जाता रहा है। भारत की वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अन्य परम्पराओं में मतभेद होते हुए भी संगीत कानिरपवाद महत्व माना गया है। चंचल मनः प्रवृतियों का निराकरण कर चित्त की एकाग्रता से मानव मंगल की सिद्धि–यही संगीत सम्बन्धी भारतीय दृष्टिकोण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *विजय लक्ष्मी जैन – संगीत दर्शन (1989)*
2. *भगवत शरण शर्मा – भारतीय संगीत का इतिहास (2001)*
3. *गिरिश चन्द्र उप्रेति– भारतीय संगीत (1996)*
4. *निशि माथुर – भारतीय संगीत कलाकार (2001)*